वारना, बुल्गारिया
जून १२, २००३

सन्देश संख्या ५७

पतंजलि के योगसूत्र – विभूतिपाद

विभूतिपाद

मन को भस्मीभूत करना तीसरा सोपान है :

(भस्म शिव की विभूति है। मन का अर्थ है ललक, भय और निर्भरता न कि स्मृति और बुद्धि।

१. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।
मन की गतिविधि में विराम और अन्तराल वही है जो जीवन–प्रवाह को धारण करता है।

२. तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।
इस प्रकार के अन्तरालों में ही ''जो है'' का निर्बाध प्रत्यक्षबोध होता है। यही ध्यानशील अन्तर्दृष्टि है।

३. तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ।
ध्यानशील अन्तर्दृष्टि के द्वारा सहजावस्था शून्यता के रूप में आविर्भूत होती है। यही समाधि है।

४. त्रयमेकत्र संयमः ।
धारणा, ध्यान, समाधि इन तीनों के समन्वय से पूर्ण सामञ्जस्य का निर्माण होता है।

५. तज्जयात्प्रज्ञालोकः ।
उससे प्रबोध का उदय होता है।

६. तस्य भूमिषु विनियोगः ।
प्रबोध विभेदकारी चित्तवृत्ति की भूमि को रूपान्तरित करता है।

७. त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ।
यह त्रिमूर्ति पूर्ववर्तियों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार) की तुलना में अन्तर्मुखी है।

८. तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ।
यह त्रिमूर्ति भी निर्बीज समाधि की पृष्ठभूमि में बहिर्मुखी प्रतीत होती है।

९. व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ।
पूर्वाग्रहों की उत्पत्ति, अभिव्यक्ति और निष्पत्ति भी विचारों के सतत मंथन में रूकाव के साथ–साथ असतत हो जानी चाहिए। तभी चित्तवृत्तिनिरोध का दृढ़ीकरण हो सकता है।

१०. तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ।
समस्त अनुबन्धन के बावजूद उस पूर्णता से मंगल प्रवाहित होता है।

११. सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ।
मन के उदय और क्षय के बावजूद विकल्परहित जागरूकता के द्वारा साम्यावस्था में दृढ़ होना संभव है।

१२. ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ।
साम्यावस्था के दृढ़ीकरण के फलस्वरूप सुसुप्ति और जागृति में द्वैतरहित प्रत्यक्षबोध के माध्यम से एक अविचल ध्यानावस्था का भी दृढ़ीकरण हो जाता है।

१३. एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ।
मानसिक और शारीरिक लक्षणों तथा अनुबन्धनों के रूपान्तरण से उत्पन्न सहजावस्था (धर्म) के दृढ़ीकरण की व्याख्या इसी प्रकार से हो सकती है।

१४. शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ।
चाहे वे अन्तर्निहित तथा शान्त, व्यक्त या अव्यक्त रूप में हों, उनके गुणों में अनुरूपता बनी रहती है तथा वे एक ही आधारभूमि पर अवस्थित होते हैं।

१५. क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ।
गुणों के विभिन्न क्रम विविध परिणाम उत्पन्न करते हैं।

१६. परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ।
इन तीनों (निरोध, समाधि, एकाग्रता) के पूर्ण सामञ्जस्य से भूत और भविष्य का आभास प्राप्त होता है। मन भूत और भविष्य है। जीवन विद्यमानता है।

१७. शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्समरस्तत्प्रविभाग–संयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ।

शब्द तथा शब्दार्थ पर पूर्वधारणायें थोपने से गड़बड़ी उत्पन्न होती है। यदि इसे नियन्त्रित किया जाये तो समस्त भूतमात्र के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न होती है।

१८. संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ।
अनुबन्धन के प्रति जागरूकता द्वारा इसके उद्‌गम का पता लगाना सभंव हो सकता है।

१९. प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ।
प्रत्यक्षबोध के द्वारा दूसरों के उद्‌देश्य को जानना संभव हो सकता है।

२०. न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ।
किन्तु यह दूसरों के विषय में किसी मानसिक छवि के पोषण पर आधारित नहीं है।

२१. कायरूपसंयमात्तद्‌ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्धानम् ।
अपने शरीर के साथ अतिशय लगाव को संयमित करने,इसके सम्बन्ध में अनावश्यक चिन्ताओं को स्थगित रखने तथा इसमें जो घटित हो रहा है उसकी उपेक्षा करने से देहमोह से मुक्ति पाना संभव है।

२२. एतेन शब्दाद्यन्तर्धानमुक्तम् ।
इस प्रकार देह–मोह से उत्पन्न अनुभवों तथा संश्लि शब्दजाल से मुक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार तन्मात्रायें प्रकट होती हैं जो कि इन्द्रिय–आसक्ति में प्रवृत्त हुए बगैर प्रत्यक्षबोध कराती हैं।

२३. सोपक्रमं निरुपक्रमं च कम तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिभ्यो वा ।
मानसिक गतिविधियों में उलझाव को नियन्त्रित करने तथा उनके घटित होने पर भी उनमें न फँसने पर उनके शुभ या अशुभ फल को जानना संभव है।

२४. मैत्र्यादिषु बलानि ।
मैत्रीभाव बल प्रदान करता है।

२५. बलेषु हस्तिबलादीनि ।
हाथी के बल की कल्पना करने से व्यक्ति बलशाली अनुभव करता है।

२६. प्रवृत्त्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृज्ञानम् ।
एक्स–रे तथा दूरबीन जैसी दृष्टि विकसित करना संभव है जो व्यक्ति को प्रच्छन्न एवं सुदूर वस्तुओं को समझने में सक्षम बनाता है।

२७. भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ।
सूर्य पर ध्यान के माध्यम से नक्षत्र विज्ञान का ज्ञान संभव है।

२८. चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ।
चन्द्रमा पर ध्यान करने से तारामण्डल के सम्बन्ध में ज्ञान संभव है।

२९. ध्रुवे तद्‌गतिज्ञानम् ।
ध्रुवतारे पर ध्यान करने से नक्षत्रों की गति का ज्ञान संभव है।

३०. नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ।
नाभि (मणिपुर चक्र) पर ध्यान करने से भय न हो जाता है और प्रज्ञा का उदय होता है।

३१. कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ।
विशुद्ध चक्र (कण्ठकूप) पर ध्यान भूख और प्यास को कम कर देता है।

३२. कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ।
जालन्धर बन्ध (कूर्मनाड़ी) के माध्यम से स्थिरता आती है।(ठुढी को वक्ष पर लगाकर दबाना जालन्धरबन्ध है।)

३३. मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ।
सहस्रार पर ध्यान यथार्थ दृष्टि के प्रकाश को उद्‌घाटित करता है।

३४. प्रातिभाद्वा सर्वम् ।
अथवा देदीप्यमान प्रकाश के माध्यम पूर्णत्वबोध।

३५. हृदये चित्तसंवित् ।
हृदय में प्रत्यक्षबोध के द्वारा चित्तवृत्तियों की पूर्ण समझदारी प्राप्त होती है।

३६. सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासमीर्णयोः प्रत्ययाविशेषाद् भोगः परार्थत्वात्स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम् ।

दिव्यचैतन्य (पुरूष) असीम है। इस चैतन्य की धुँधली झलक अनुभव है। जब बहिर्मुखी चित्तवृत्ति (परार्थत्व) से जानने की अन्तर्मुखी प्रक्रिया की ओर गति होती है तब चितिशक्ति की प्रज्ञा (पुरूष–ज्ञानम्) का प्रवाह होता है।

३७. ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ।
यह प्रज्ञा पूर्ण चैतन्य के एक संकाय को जन्म देती है जो कि तन्मात्रा (श्रवण, वेदन, आदर्श, आस्वाद, वार्ता) के स्तर पर प्रत्यक्ष अनुभूति कराती है। अब हमें परम दिव्य चैतन्य (पुरूष) से बहुत कुछ सीखना संभव हो जाता है।

३८. ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ।
स्थितप्रज्ञता की उर्जा का एक उपसर्ग सिद्धि के रूप में उत्थापित हो सकता है (किन्तु ऐसी सिद्धियों का वर्जन ही तो परम सिद्धान्त है)।

३९. बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ।
बन्धनमुक्ति एवं कारणकार्य मुक्ति संवेदनाशीलता को बढ़ाती और फैलाती है। यह शुद्ध चेतना दूसरों को भी प्रभावित करती है।

४०. उदानजयाज्जलपमकण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ।
जीवन के कतिपय मौलिक स्पन्दनों से परे हो जाने पर प्राकृतिक प्रतिकूलताओं से ऊपर उठना सम्भव है।

४१. समानजयाज्ज्वलनम् ।
कुछ अन्य स्पन्दनों के माध्यम से शरीर देदीप्यमान हो सकता है।

४२. श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ।
श्रवण और शून्य के मध्य सम्बन्ध एवं सामञ्जस्य दिव्य ध्वनि की ओर ले जाता है।

४३. कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम् ।
सभी से विकल्परहित दूरी रखने के माध्यम से प्रकृति और शरीर के सम्बन्ध में एक सामञ्जस्य उत्पन्न होता है जिसके कारण एक हल्केपन की अनुभूति होती है मानो शून्यता में तैर रहे हों।

४४. बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ।
अस्तित्व की महान् अवस्था में अनुभव के बोझ और बन्धन नहीं रहते तथा चित्त की बहिर्मुखी वृत्तियों में आसक्ति समाप्त हो जाती है और इस प्रकार प्रबोध के आवरण का क्षय हो जाता है।

४५. स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्वसंयमाद्भूतजयः ।
''जो होना चाहिए'', ''जो है'' तथा गुप्त उद्देश्य के मध्य समन्वय के लिए संयमित होने से अतीत कम–प्रभाव, मानसिक उत्पात और अनुबन्धन को नकारा जा सकता है।

४६. ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च ।
अतीत से मुक्ति के फलस्वरूप परमानन्द तथा अत्यधिक मंगलमय अवस्था का आविर्भाव होता है। तब शरीर अपनी सहजावस्था में होता है, यह शुद्ध अस्तित्व की अवस्था है और निर्वाण–प्रक्रिया में सब बाधायें समाप्त हो जाती हैं।

४७. रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसम्पत् ।
शरीर की संपदायें हैं – रूप, लावण्य, ऊर्जा तथा बल।

४८. ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ।
अहंभाव की समझदारी से शरीर को सहजावस्था प्राप्त होती है। इससे तन्मात्रा–स्तर की अनुभूति इन्द्रिय–स्तर के भोगानुभव में परिवर्तित नहीं होती है और इस प्रकार इन्द्रिय–विजय हो जाता है।

४९. ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ।
इन्द्रिय–अंग तथा चित्तवृत्ति के हस्तक्षेप से छुटकारा ही सर्वश्रेष्ठ विजय है।

५०. सत्त्वपुरूषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ।
चैतन्य–प्रज्ञा (पुरूष) और चित्त–बुद्धि (सत्व) के मध्य भिन्नता (अन्यता) के प्रति जागरूक रहने मात्र से एक सर्वभावावस्था तथा सर्वज्ञावस्था प्राप्त होती है।

५१. तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ।

जब व्यक्ति ऐसी उपलब्धियों के प्रति उदासीन बना रहता है तब सर्वदोष के बीजों का क्षय होने लगता है तथा कैवल्यावस्था की शुरूआत होती है।

५२. स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिप्रसङ्गात् ।
योगी अनेक स्थानों पर सम्मानपूर्वक आमन्त्रित होते हैं किन्तु वे किसी आसक्ति या अभिमान (स्मय) में नहीं फँसते क्योंकि इससे पुनः अनिकर स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

५३. क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ।
मुहूर्त प्रति मुहूर्त सजग तथा विवेकपूर्ण जागरूकता द्वारा पूर्ण सत् का प्रत्यक्षबोध (अनुभव नहीं) हो सकता है।

५४. जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात्तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ।
जब व्यक्ति जन्म, गुण अथवा देश–काल जनित भिन्नता के बावजूद बिना किसी भेदभाव के सभी से समान व्यवहार करता है तब वह समादृत और प्रतिष्ठित होता है।

५५. तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् ।
जानना केवल प्रत्यक्षबोध से संभव है जो सभी विषयों, स्थानों और गड़बड़ियों से परे है।

५६. सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ।
चित्त–बुद्धि (सत्व) और चैतन्य–प्रज्ञा (पुरूष) के मध्य शुद्ध सामञ्जस्य ही कैवल्यावस्था है (अलग–थलग न होते हुए भी पूर्ण स्वातन्त्र्य–सम्पूर्ण एकाकित्व)।

।। जय गुरू ।।